|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 18: मोक्षसंन्यासयोग

3/6 (श्लोक 23-35), रविवार, 23 मार्च 2025

विवेचक: गीता विदूषी सौ वंदना जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/VO_vHCyhITU

विवेक बुद्धि की जागृति

परमपिता परमेश्वर की आराधना, श्री हनुमान चालीसा पाठ, श्री गुरु चरणों की वन्दना एवं दीप प्रज्ज्वलन के साथ आज के सत्र का शुभारम्भ हुआ।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः ।।
नमामि सद्गुरुं शान्तं सच्चिदानन्दविग्रहम्।
पूर्णब्रह्म परमानन्दम् ईशमालंदिवल्लभं।।

सर्वप्रथम माता सरस्वती, भगवान वेदव्यास, सन्त ज्ञानेश्वर जी महाराज एवं सद्गुरु श्री गोविन्ददेवगिरि जी महराज के चरणों में वन्दन किया गया। अट्ठारहवाँ अध्याय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अध्याय है। हम सभी माँ गीता के सभी अध्यायों के श्लोकों को कण्ठस्थ करने एवं इसकी शिक्षा को आत्मसात् करने का प्रयास कर रहे हैं। श्रीमद्भगवद्गीता, माँ गङ्गा के समान पवित्र करने वाली धारा है, जो ज्ञान, कर्म और भक्ति के साथ हमारे जीवन को आलोकित करती है। इसके सभी अध्याय महत्त्वपूर्ण हैं, किन्तु कुछ अध्याय हैं जिनके गहन चिन्तन की आवश्यकता है। फिर यह अध्याय तो कलश (अन्तिम) अध्याय है, अतः जो इसके चिन्तन में जितना डूबेगा और गहराई में जाने का प्रयास करेगा, श्रीमद्भगवद्गीता उतना ही उस व्यक्ति पर कृपा बरसाती है और ज्ञान, कर्म और भक्ति की गहराई में ले जाती है।

हम सब जानते हैं कि गीता ग्रन्थ पाँच सहस्र वर्ष पहले समराङ्गण में दिया गया उपदेश है, तथापि आज की परिस्थितियों में भी यह हमारी सहायता एवम् उन्नयन में उतना ही सक्षम है, जितना आज से पाँच सहस्र वर्ष पहले अर्जुन के लिए था, जिन्हें श्रीभगवान् ने यह अमृतपान करवाया था। इसका कारण यह है कि प्रसङ्ग चाहे जैसा भी हो, विज्ञान ने इस अवधि में कितनी ही उन्नति क्यों न कर ली हो किन्तु मनुष्य की मनःस्थिति आज भी वैसी ही है जैसी आज से सहस्त्रों वर्ष पहले थी।

विज्ञान उन्नति करने के पश्चात भी गीता जी में विश्वास कैसे रखता है? इसका उदाहरण हम अभी सुश्री सुनीता विलियम्स जी के प्रसङ्ग से देख सकते हैं। भारत की यह सनातनी बेटी अन्तरिक्ष में जाते समय भी अपने साथ श्रीमद्भगवद्गीता लेकर गईं, उन्हें वहाँ पूरे नौ महीने धैर्यपूर्वक बिताने पड़े और अभी दो-तीन दिन पहले ही वह लौटी हैं। श्री गणेशजी की प्रतिमा और गीता जी की छोटी सी पुस्तिका अन्तरिक्ष में भी सदैव उनके साथ थी। उस पुस्तिका को साथ में रखने के लिये उन्हें अपने शरीर का भार भी

कम करना पड़ा। वह उपनिषद् भी अपने साथ रखती हैं। ये सभी ग्रन्थ हमें मनोबल प्रदान करते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता प्रतिकूल परिस्थितियों में भी धैर्य रखना सिखाती है।

श्रीभगवान् इस अध्याय के माध्यम से एक बार फिर अर्जुन को सम्पूर्ण सार बताते हुए कहते हैं कि हमारा अन्तःकरण इस सृष्टि का प्रतिबिम्ब है और यह सृष्टि त्रिगुणात्मिका सृष्टि है, सत्त्व, रज और तम गुणों वाली, इसलिए सभी मनुष्यों का शरीर और उनकी प्रकृति एक दूसरे से भिन्न होते हैं।

मराठी में कहते हैं-

व्यक्ति तितक्या प्रकृति।

अर्थात् जितने प्रकार के व्यक्ति उतने प्रकार की प्रकृति। तीनों भिन्न गुणों के कारण मनुष्य के गुण संयोजन की मात्रा में भी भिन्नता होती है। गुणों का प्रमाण बदलने से एक व्यक्ति की दूसरे व्यक्ति से भिन्नता हो जाती है। ये तीनों गुण एक दूसरे पर हावी होते जाते हैं, यह अन्त: परिवर्तनीय (interconvertible process) है इसलिए यह सृष्टि तीनों गुणों का मिश्रण है।

अर्जुन ने त्याग का महत्त्व पूछा तो श्रीभगवान् ने त्याग, कर्म, कर्त्ता, बुद्धि, धृति, सुख सबके महत्त्व को त्रिगुणात्मक रूप से बताया। हम सब के अन्तरङ्ग में ईश्वर का एक प्रतिबिम्ब है, किन्तु इस प्रतिबिम्ब की अनुभूति हमें नहीं होती है, क्योंकि यह प्रतिबिम्ब हमारे अन्तरङ्गी चतुष्टय के अन्दर छुपा हुआ है। यह बिल्कुल उसी प्रकार है जैसे कोई वस्तु एक ऐसे काँच के अन्दर स्थित हो, जिसमें से अन्दर से बाहर तो देखा जा सकता है परन्तु बाहर से अन्दर नहीं। ईश्वर अन्दर बैठे हैं जो हमें देख पाते हैं, किन्तु हम उन्हें नहीं देख पाते हैं। हमारे हृदय में माया का आवरण होने के कारण इस प्रतिबिम्ब में विद्यमान ईश्वर हमें नहीं दिखाई देते हैं। हमारे तीनों गुणों के कारण और सृष्टि में रहते हुए नित्य कार्यकलापों के सम्बन्धों के कारण ये गुण हमारे व्यक्तित्व पर हावी हो जाते हैं। जब तक हमें यह पता नहीं होगा कि हम दूसरों से अलग क्यों हैं? और दूसरे हमसे अलग क्यों हैं? तब तक हम लोग इन गुणों के परे उस गुणातीत परमात्मा तक नहीं पहुँच पाते हैं, इसलिए श्रीभगवान् ये सारी बातें हमें समझाते हैं, जिससे कि हम यह स्वयं को परख सकें, सृष्टि को समझ सकें और यह देखें कि हम उनसे भिन्न क्यों हैं और भिन्न होते हुये भी एकत्त्व किस प्रकार से है?

परमात्मा के साथ एकत्त्व तक पहुँचना ही मनुष्य के जीवन का अन्तिम गन्तव्य है। श्रीभगवान् ने बताया कि त्याग, ज्ञान और कर्म इन तीनों बातों तथा सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों के मिश्रण से सात्त्विक, राजसिक और तामसिक प्रवृत्ति कैसे बनती है और यह व्यवहार में कैसे आती है?
अब श्रीभगवान् कर्म के लक्षण बताते हैं। इसके पहले हमने त्याग तथा कर्म के लक्षण देखे थे।

कर्म भी तीन प्रकार का होता है।
सात्त्विक, राजसिक और तामसिक।

सत्त्व, रज और तम गुणों के बारे में हम चौदहवें, नौवें एवम् सत्रहवें अध्याय में पढ़ चुके हैं।

सत्त्वगुण ज्ञान प्राप्त करने हेतु सहायक होता है।
यह ज्ञान का प्रतीक है।

रजोगुण कार्यसिद्धि हेतु सहायक होता है।
यह कार्यशीलता का प्रतीक है।

तमोगुण शून्यता अथवा जड़त्त्व (inertia) का प्रतीक है।

सात्त्विकता, राजसिकता और तामसिकता ये तीनों गुण किसी एक स्थान या वस्तु में दिखाने के लिए हम मोटर (car) का उदाहरण देखते हैं।

स्टीयरिंग (Steering) के कारण गाड़ी सही दिशा में चलती है, इसलिए यह सत्त्वगुण का प्रतीक है।

पेट्रोल (Petrol) के बिना गाड़ी चल नहीं सकती है, इसलिए यह रजोगुण का प्रतीक है।

ब्रेक (Break) से गाड़ी रुकती है, इसलिए यह तमोगुण का प्रतीक है।
इसी प्रकार से जीवात्मा भी तीनों गुणों से इस सृष्टि में रहता और कार्य करता है और ज्ञान भी प्राप्त करता है। बात गम्भीर है किन्तु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

अगले श्लोक में श्रीभगवान् अर्जुन को बताते हैं कि शास्त्रविधि में कर्म भी नियत है। जब हम सृष्टि को देखते हैं तो हमें पता चलता है कि गुणों के अनुसार ही कर्म भी होते हैं। जो लोग अपराध में लिप्त होते हैं, वे लोग और उनकी बुद्धि भी तमोगुण से परिपूर्ण हैं। वह कर्त्ता भी वैसा ही होगा।
राजसिक फल की प्राप्ति हेतु जो कर्म किया जायेगा वह कर्म भी राजसिक होगा।

हमें अपने कर्म को तामसिक से राजसिक,
फिर राजसिक से सात्त्विक की ओर उठाना है।
तत्पश्चात् गुणातीत परमात्मा की ओर ले जाना है।
यही हमारे जीवन की यात्रा है।

18.23

नियतं(म्) सङ्गरहितम्, अरागद्वेषतः(ख्) कृतम्।
अफलप्रेप्सुना कर्म, यत्तत्सात्त्विकमुच्यते॥18.23॥

जो कर्म शास्त्रविधि से नियत किया हुआ (और) कर्तृत्वाभिमान से रहित हो (तथा) फलेच्छारहित मनुष्य के द्वारा बिना राग-द्वेष के किया हुआ हो, वह सात्त्विक कहा जाता है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि जो कर्म हमें सृष्टि द्वारा सौंपा गया है। जिस घर में हमारा जन्म हुआ है, उस घर में जो कर्म हमें स्व-कर्त्तव्य के रूप में मिले हैं, वे नियत कर्म अर्थात् नियति द्वारा निर्धारित कर्म हैं। इन कर्मों को हमें सर्वप्रथम करना है। ये मातृधर्म, पितृधर्म, पुत्रधर्म, अपने पड़ोस, समाज और राष्ट्र के प्रति कुछ भी हो सकता है।

इसके बाद आता है संङ्गरहित कर्म।
सङ्ग का अर्थ है आसक्ति अर्थात् मेरा सङ्ग उस कर्म से जुड़ गया। जिस प्रकार हम गृहणियाँ होती हैं, हमारा कर्मक्षेत्र हमारी रसोईं और हमारा घर होता है। हम किसी भी मूल्य पर इसे छोड़ना नहीं चाहते हैं। हमें लगता है कि हमारे बिना ये सारे कार्य नहीं हो सकेंगे। अपना अधिकार छोड़ना अत्यन्त कठिन है। उस कर्म की आसक्ति हो जाती है। श्रीभगवान् कहते हैं कि कर्म भी कालानुसार बदलते रहते हैं। जैसे वयानुसार हमारे आश्रम- ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, संन्यासाश्रम के कर्त्तव्य बदलते हैं। उसी के अनुसार एक कर्म को छोड़कर दूसरे कर्म को स्वीकार करना यही सङ्ग रहित कर्म है। उदहारण के लिये मोगरे के फूल हमने किसी डलिया में रख दिये। फूल उसमें से हटाने के बाद भी उस डलिया से मोगरे के फूलों की सुगन्ध आती रहती है। मोगरे के फूलों के सङ्ग के कारण उसकी सुगन्ध का गुण डलिया से चिपक कर रह गया है। किसी भी कर्म की आसक्ति किये बिना हमें वह कार्य करना है।

इसके बाद उस कर्म के फल की प्राप्ति के बिना कर्म को करना चाहिये अर्थात् इस कर्म को करके हमें क्या फल मिलेगा? इसकी इच्छा नहीं रखनी चाहिये। जैसे माता-पिता अपने बच्चों का लालन पालन करते हैं, उसमें उनका स्वार्थ नहीं होना चाहिये। यदि वे यह सोचें कि यह बच्चा बड़ा होकर मेरी सेवा करेगा तो यह कर्म व्यर्थ है। बच्चे का सङ्गोपन नियति द्वारा निर्धारित किये गये कर्म के अनुसार सोचने से फल की आकाङ्क्षा नहीं रहेगी। यही सात्त्विक कर्म होगा।

आगे रुचि के अनुसार कर्म करने या न करने को श्रीभगवान् अरागद्वेषतः कहते हैं, यह भी सात्त्विक कर्म का उदहारण

है। सात्त्विक कर्म करने से हम ईश्वर प्राप्ति की प्रक्रिया की ओर बढ़ते हैं। ऐसे व्यक्तियों के लिये कर्म करने की प्रक्रिया ही आनन्ददायी हो जाती है। उन्हें फल की आकाङ्क्षा नहीं रहती है।

सङ्गीत सम्राट तानसेन बादशाह अकबर के दरबार के नवरत्नों में से एक तथा प्रसिध्द गायक थे। तानसेन बादशाह को सुन्दर गायन करके सुनाते थे। एक बार बादशाह ने उनसे कहा कि यदि आप इतना सुन्दर गाते हैं तो आपके गुरु कितना अच्छा गाते होंगे। मुझे उन्हें सुनना है। तानसेन जी उन्हें एक स्थान पर ले गये जहाँ बहुत ही मधुर गायन सुनायी दे रहा था जोकि तानसेन जी की गायकी से कहीं अधिक स्वर्गीय और सुन्दर था। सङ्गीत सुनकर बादशाह ने तानसेन से कहा कि यह आकर्षण उनकी गायकी में क्यों नहीं है? तो तानसेन जी ने उत्तर दिया कि जहाँपनाह, मैं दिल्लीश्वर के लिये गाता हूँ और गुरुजी जगदीश्वर के लिये। दोनों की गायकी में बहुत अन्तर है। मैं आपसे उपहार पाने और आपको प्रसन्न करने के लिये गाता हूँ और गुरुजी साक्षात् ईश्वर के लिये गाते हैं।

फलप्राप्ति की इच्छा के बिना किया गया कर्म
आनन्द की प्राप्ति तथा चित्त की शुद्धि का मार्ग हो जाता है।

ऐसा करने से हम अनुकूल परिणाम न मिलने अथवा फल न मिलने के विकार से भी बच जाते हैं। हम सामान्य लोग हैं। हमारे सारे कर्म फलप्राप्ति रहित नहीं हो सकते हैं, तथापि हमारे कुछ कर्म ऐसे हो सकते हैं, जो फलप्राप्ति की इच्छा से रहित हों। वे कर्मयोग की ओर हमारा मार्ग अग्रसर करते हैं।

18.24

यत्तु कामेप्सुना कर्म, साहङ्कारेण वा पुनः।
क्रियते बहुलायासं (न्), तद्राजसमुदाहृतम्॥18.24॥

परन्तु जो कर्म भोगों की इच्छा से अथवा अहंकार से और परिश्रमपूर्वक किया जाता है, वह राजस कहा गया है।

विवेचन- श्रीभगवान् अर्जुन से कहते हैं कि सभी लोग कामनारहित कर्म नहीं कर पायेंगे किन्तु कुछ लोग परिश्रम से युक्त कर्म करते हैं और फल प्राप्ति की इप्सा (लालसा) से करते हैं।

बिना कामना का कर्म तो सात्त्विक कर्म हो जायेगा, परन्तु जो कर्म अहङ्कार युक्त होकर, परिश्रम और फल की इच्छा के साथ किया जाता है, उसे राजसिक कर्म कहते हैं।

एक बार हमारे प्रधानमन्त्री ने लाल किले से भाषण दिया था कि जो लोग बिना फल की इच्छा के कार्य करेंगे और यदि फल की इच्छा नहीं है तो मेरा क्या? इस भावना से कार्य करेंगे, तभी वे कार्य को राष्ट्र के हित में कर पायेंगे।

यह मध्यम स्तर है, जहाँ बिना किसी इच्छा अथवा लालसा के व्यक्ति किसी कर्म को नहीं करते हैं।

18.25

अनुबन्धं(ङ्) क्षयं(म्) हिंसाम्, अनवेक्ष्य च पौरुषम्।
मोहादारभ्यते कर्म, यत्तत्तामसमुच्यते॥18.25॥

जो कर्म परिणाम, हानि, हिंसा और सामर्थ्य को न देखकर मोहपूर्वक आरम्भ किया जाता है, वह तामस कहा जाता है।

विवेचन- तीसरे प्रकार का कर्म है जो परिणाम और पुरुषार्थ के बारे में विचार न करते हुये और मोह में आकर किया जाता है, जिसका एक कारण अज्ञान भी है, उस कर्म को तामसिक कर्म कहते हैं।

अनुबन्ध का अर्थ है-
परिणाम, पुरुषार्थ, मोह और अज्ञान, इन सबकी एक श्रृङ्खला। इसका उदहारण है वे लोग जो किसी अपराधिक गतिविधि में लिप्त रहते हैं- जैसे बम विस्फोट, वे परिणाम के बारे में नहीं सोचते हैं। (अभी-अभी हमने नागपुर में हिंसा का उदाहरण देखा, जिसमें दो गुटों के मध्य विवाद हुआ और उन्होंने एक दूसरे को कैसे हानि पहुँचायी। उसमें जनहानि हुई वस्तुओं की हानि हुई।

इस कर्म में पौरुष और सामर्थ्य है, किन्तु उसकी दिशा अनुचित है। इसमें विचार और विवेक नहीं है। ऐसे कर्म किसी बदले की भावना से, किसी के उत्तेजित करने के कारण, किसी विकार भाव से किये जाते हैं, इन कर्मों के परिणाम निर्धारित नहीं होते हैं, इन कर्मों को तामसिक कर्मों की श्रेणी में रखा जाता है।

युद्ध जब भी होते हैं तब वे भयङ्कर परिणाम देकर जाते हैं, जिनका किसी ने विचार भी नहीं किया होता है। अभी हमास में युद्ध हुआ, तब बच्चों के माँस को पकाकर उनकी ही माताओं को खिलाया गया, जोकि अत्यन्त ही घृणित कार्य था।

ये कर्म की कौन सी श्रेणी है? जो इतना भयङ्कर परिणाम देकर जाती है? यह तामसिक श्रेणी है। इस प्रकार के कर्मों को करने वाले व्यक्ति भी अपने कर्मानुसार सात्त्विक, राजसिक और तामसिक होते हैं। यदि किसी में सत्त्वगुण बहुत अधिक है, थोड़े से रजोगुण हैं और अत्यन्त ही कम तमोगुण हैं तो वह व्यक्ति सात्त्विक प्रवृत्ति का होगा।

जीवन के लिये तीनों गुण आवश्यक हैं,
जिस गुण की अधिकता होगी उसी प्रकार
व्यक्ति का स्वभाव हो जाता है।

हम देखते हैं कि एक ही माता के बच्चे भिन्न-भिन्न प्रवृत्ति के होते हैं।
एक बच्चा बिना किसी लालसा के अपना गृहकार्य कर लेता है,
वह सात्त्विक बालक है।

दूसरे बच्चे को लालच देना पड़ता है,
वह राजसिक बालक है।

एक बच्चा वह भी होता है जो लालच देने पर भी,
अपना कार्य नहीं करता है, वह तामसिक बालक है।

18.26

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी, धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः(ख्), कर्ता सात्त्विक उच्यते॥18.26॥

(जो) कर्ता राग रहित, कर्तृत्वाभिमान से रहित, धैर्य और उत्साहयुक्त (तथा) सिद्धि और असिद्धि में निर्विकार है, (वह) सात्त्विक कहा जाता है।

विवेचन- पूज्य गुरुदेव कहते हैं कि व्यक्ति को कार्य करते समय यह श्लोक अपने समक्ष रखना चाहिये।

मेरा कार्य कैसा होना चाहिये? चाहे वह गीता जी में आहुति देने का कार्य हो या हमारे जीवन के दूसरे कर्त्तव्य कर्म।

श्रीभगवान् कहते हैं कि फल की आसक्ति से रहित, अहङ्कार मुक्त भावना से, धैर्य और उत्साह के साथ जो कर्म करता है वह उत्तम कार्य करता है।

कर्मरथ के दो चाक हैं
शौर्य (courage) और धैर्य (patience)।

किसी भी कर्म को उसके गन्तव्य तक ले जाने के लिये ये दोनों ही आवश्यक हैं।

जब सभी वानर माता सीता की खोज में निकले थे और श्रीहनुमानजी भी उनके साथ थे। बहुत ढूँढने पर भी जब माता नहीं मिली, सभी हतोत्साहित हो गये, तब श्रीहनुमानजी ने विचार किया कि अपने इष्ट प्रभु श्रीराम की शक्ति माता सीता को खोजने के लिये मुझे धैर्य से कार्य करना होगा। इस प्रकार शौर्य और धैर्य दोनों की आवश्यकता है।

हमें एक कर्म करने के बाद वह कर्म सिद्ध हो अथवा न हो अर्थात् उसका फल मिले अथवा न मिले, आगे दूसरा कर्म करने के लिये सिद्ध हो जाना चाहिये। हम बहुधा एक कर्म को करने के बाद उसके सङ्ग में फँस जाते हैं, जिसके कारण हमें उस कार्य की पूर्णता का हर्ष भी होता है, जिसे रोमाञ्च (euphoria) कहते हैं और यदि वह कार्य सिद्ध न हुआ तो हम अवसाद (depression) में चले जाते है। हर्ष और अवसाद इन दोनों से जो मुक्त है अर्थात् उस कार्य की पूर्णता या अपूर्णता, पुनः वह कार्य मिले या अन्य कार्य मिले, वह प्रत्येक स्थिति में समान रहना है।

श्री ज्ञानेश्वर महाराज इस परिस्थिति के लिये बताते हैं-

माळियें जेउतें नेलें, तेउतें निवान्तचिं गेलें।।
तया पाणिया ऐसे केलें, हो आवें गा।।

माली जिस प्रकार से अपने बगीचे में जल के लिये मार्ग बनाता है। जब एक क्यारी में जल भर जाता है तो माली उस जल का मार्ग बदल देता है। इसी प्रकार से ईश्वर जब हमें एक कार्य से दूसरे कार्य पर लगाते हैं तब हमें भी निर्विकार भाव से उस कार्य को स्वीकार कर लेना चाहिये। हमारे महापुरुषों एवं सन्त महात्माओं के जीवन में यह प्रतिबिम्बित होता है। शिवाजी महाराज ने गीता पढ़कर जीवन में उतारी थी। जो व्यक्ति गीता को पढ़कर अपने जीवन में उतारता है, वह सात्त्विक व्यक्ति है। हमने अभी हनुमान चालीसा में श्री हनुमानजी के बारे में सुना है -

विद्यावान गुनी अति चातुर
विद्यावान होने के साथ ही वे चतुर भी हैं।
मनोजवं मारुततुल्य वेगं
जितेन्द्रियं बुद्धिमताम् वरिष्ठं।

वे अपनी सारी क्षमता, सारे गुण श्रीराम के कार्य में लगा देते है, इसी प्रकार कोई जो भी सारे कार्य करता है और उन्हें प्रभु का कार्य समझता है, वह सात्त्विक कार्यकर्ता है।

धर्माच्या करिता आम्हास जगती रामा ने धाडीयले।।
ऐसे जाणुनि राम भक्ती करण्या ऐश्वर्य हे लाभले।।
आता धर्मसख्या तुझ्या पुढ़तिया नम्रत्वतेने असे।।
इच्छा हो जशी मानसी करी तसे हा देह तुझा असे।।
जय जय रघुवीर समर्थ।।

ईश्वर ने हमें धर्म के उद्देश्य से भेजा है, ऐसा समझ में आ जाने के पश्चात् ईश्वरत्त्व के ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। मैं ईश्वर की इच्छा के अनुरूप ही रहना चाहता हूँ। जो कर्त्ता ऐसा सोचता है वही सात्त्विक कर्त्ता है।
ईश्वर द्वारा प्रदत्त कोई भी कार्य हो सकता है। चाहे वह राष्ट्र के प्रति हो, समाज के प्रति हो अथवा माता-पिता या गुरु के प्रति भी हो। सन्त महात्मा भगवद् रक्षा के हित में कार्य करते हैं।

हमारे गुरुदेव के जीवन में हम देख सकते हैं कि कैसे उन्होंने वेदों की रक्षा के लिये चालीस वेद विद्यालयों की स्थापना की। जैसे ही उन्हें श्रीराम मन्दिर स्थापना के लिये तीर्थक्षेत्र अयोध्या में कोषाध्यक्ष के पद पर नियुक्त किया गया, उन्होंने सभी स्थानों पर जाकर मन्दिर निर्माण के लिये अविरल और अविश्रान्त धन राशि का सङ्ग्रह करने का कार्य किया। सनातन धर्म की स्थापना के लिये उन्होंने एक-एक व्यक्ति तक अपनी पहुँच बनायी क्योंकि उन्हें यह कार्य ईश्वर ने सौंपा है।

हमारे सन्त-महात्मा और महान लोग इसी पद्धति से कार्य करते हैं। शिवाजी महाराज ने कहा कि यह राज्य तो श्री का राज्य है, जगदम्बा का राज्य है, मैं उसके लिये यह कार्य कर रहा हूँ। जब आप ऐसा सोचकर कार्य करते हैं तो शक्ति का संचार हो जाता है।

सुनीता विलियम्स गीताजी को साथ लेकर अन्तरिक्ष में गयीं और उसी शक्ति के साथ वो नौ महीने तक वहाँ रह पायीं कि ईश्वर ने मुझे यहाँ किसी विशेष कार्य से भेजा है।

ज्ञानेश्वर महाराज अपनी ओवी में कहते हैं-

किम्बहुना तुमचें केलें। धर्म कीर्तन हें सिद्धी गेलें।।
येथ माझें जी उरलें। पाईकपण।।

नौ हज़ार ओवियों को अपने मुखारविन्द से निकालने के बाद वे कहते हैं कि ईश्वर ने उनसे यह करवा लिया। वे स्वयं को ईश्वर का सेवक कहते हैं। यह महान व्यक्तियों के मात्र कथन में नहीं होता, अपितु वे इसे जीवन में भी उतारते हैं।

18.27

रागी कर्मफलप्रेप्सुः(र), लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः।
हर्षशोकान्वितः(ख) कर्ता, राजसः(फ्) परिकीर्तितः॥18.27॥

जो कर्ता रागी, कर्मफल की इच्छावाला, लोभी, हिंसा के स्वभाव वाला, अशुद्ध (और) हर्ष-शोक से युक्त है, (वह) राजस कहा गया है।

विवेचन- अपने जीवन में हम लोगों के प्रति आलोचनात्मक हो जाते हैं।

ईश्वर सभी का वर्गीकरण करते हैं-
सर्वोत्तम, मध्यम एवं निकृष्ट।

यह आपको देखना है कि आपको कहाँ से कहाँ जाना है? यहाँ श्रीभगवान् यह अर्जुन पर छोड़ते हैं कि उन्हें क्या करना है? फिर श्रीभगवान् कहते हैं कि कौन सा कर्त्ता, क्योंकि कर्म तो हम बहुत सारे करते हैं।

हमने एक कर्त्ता देखा जो कि सङ्गरहित है। उसे फल की आसक्ति नहीं है।
रागी कर्त्ता- ऐसा कर्त्ता जिसे कर्म का अभिमान है। फल प्राप्ति की इच्छा भी उसके मन में प्रबल है। वह अत्यन्त लोभी है। सात्त्विक और राजसिक कर्त्ता की मनःस्थिति में अन्तर है, जिसे हमें समझना होगा।

राजसिक कर्त्ता हिंसात्मक हो सकता है। यह हिंसा वाचिक होती है। यदि उसके मन के अनुसार नहीं हुआ तो वह अनियन्त्रित होकर किसी को भी भला-बुरा बोल सकता है। फिर उसके कर्मों में शुचिता का विचार भी नहीं होता है। हर्ष और शोक की परिस्थिति में उसका सन्तुलन बिगड़ सकता है। आज के परिप्रेक्ष्य में यह अत्यन्त ज्वलन्त उदहारण है।

आज के समय में बालक थोड़ा सा अपयश भी नहीं सहन कर पाते हैं। जब तक अपयश नहीं मिलेगा, तब तक यश का अनुभव

नहीं होगा। थोड़े से अपयश के कारण शोकाकुल नहीं होना चाहिये और थोड़े से यश के कारण हर्षोल्लासित होकर (euphoria) में नहीं चले जाना है।

श्रीभगवान् मध्यम कर्ता के गुणों का वर्णन करते हुए,
उसे राजस कहते हैं।

18.28

अयुक्तः(फ्) प्राकृतः(स्) स्तब्धः(श्), शठो नैष्कृतिकोऽलसः।
विषादी दीर्घसूत्री च, कर्ता तामस उच्यते॥18.28॥

(जो) कर्ता असावधान, अशिक्षित, ऐंठ-अकड़वाला, जिद्दी, उपकारी का अपकार करनेवाला, आलसी, विषादी और दीर्घसूत्री है, (वह) तामस कहा जाता है।

विवेचन- श्रीभगवान् तीसरे प्रकार के कर्त्ता के गुणों का वर्णन करते हुए, अर्जुन से कहते हैं कि यदि इनमें से कोई भी गुण तुम्हारे अन्दर हो तो उसे तत्काल त्याग दो, क्योंकि ये गुण नहीं अवगुण हैं।

हमें भी इन अवगुणों को त्यागना है।

सबसे पहला अवगुण है अयुक्त अर्थात् अनुशासन रहित। प्रातः विलम्ब से उठना, नित्य कर्मों को न करके अपना समय कहीं और व्यय करना। आप अपनी गीता कक्षा में देखते होंगे। आप नित्य चालीस मिनट के लिये अपनी कक्षा करते हैं, तब हम उत्साह के साथ अपना कर्म करते हैं। इसे करके हमें परमात्मा का कार्य करने की अनुभूति होती है। मात्र सिखाने से नहीं अपितु सीखने से भी हमारा जीवन आनन्द से भर जाता है।

प्राकृतः का अर्थ है असंस्कृत या अनाड़ी।

स्तब्ध का अर्थ है जिस व्यक्ति को कुछ बताने या सीखने के लिए बहुत प्रयास करने पड़ते हैं। इसका दूसरा अर्थ घमण्डी भी कहा गया है।

शठ अर्थात् बहाने बनाने में धूर्त।
कर्म भी अपने लिये व्यक्ति को चुनते हैं। कई बार व्यक्ति दिया गया कार्य न करके समय को व्यर्थ गँवाते हैं।

नैष्कृत्य अर्थात नकारात्मकता से युक्त, विषादी। ऐसा व्यक्ति हर कार्य को नकारात्मक सिद्ध करता है।

दीर्घसूत्री का अर्थ है कार्य को आगे की ओर धकेल देता है। ऐसे व्यक्ति का सिद्धान्त होता है-

आज करे सो कल कर, कल करे सो परसों
इतनी भी क्या जल्दी है, जीना है जब बरसों।

यह व्यक्ति कार्य को टालता ही रहता है। इस प्रकार के कर्त्ता को श्रीभगवान् तामसिक कर्त्ता की श्रेणी में रखते हैं। यह व्यक्ति इस संसार रूपी यन्त्र को मात्र हानि ही पहुँचाते हैं। हम सब सृष्टि के इस विशाल यन्त्र के छोटे-छोटे भाग हैं, जिनमें सबका ठीक प्रकार से कार्य करना आवश्यक है।

इसके बाद श्रीभगवान् बुद्धि और धृति के बारे में बताते हैं।

18.29

बुद्धेर्भेदं(न्) धृतेश्चैव, गुणतस्त्रिविधं(म्) शृणु।
प्रोच्यमानमशेषेण, पृथक्त्वेन धनञ्जय॥18.29॥

हे धनञ्जय! (अब तू) गुणों के अनुसार बुद्धि और धृति के भी तीन प्रकार के भेद अलग-अलग रूप से सुन, (जो कि मेरे द्वारा) पूर्णरूप से कहे जा रहे हैं।

विवेचन- त्याग, ज्ञान, कर्म और कर्त्ता के बाद अब आते हैं बुद्धि और धृति।

हम सभी को अन्ततः सुख की कामना होती है।

सुख भी तीन प्रकार का होता है।

श्रीभगवान् यहाँ अर्जुन से कहते हैं कि टअब मुझसे पूर्ण रूप से विभाग करते हुए बुद्धि और धृति के भेद सुन। तू स्वयं को किसी के समान और दूसरों को अपने समान मत समझ।

श्रीभगवान् कहते हैं कि मैं तुझे सात्त्विक, राजसिक और तामसिक बुद्धि के बारे में बताऊँगा। जिस प्रकार की बुद्धि होगी, कर्त्ता भी उसी प्रकार का होगा।

अपनी बुद्धि को परिष्कृत करते हुए उन्नयन की ओर ले जाना है।

आगे के श्लोक में हम सात्त्विक बुद्धि के लक्षण देखेंगे, जिससे कर्त्ता सात्त्विक कर्म करता है, सात्त्विक ज्ञान प्राप्त करते हुये सात्त्विक सुख प्राप्त करता है।

18.30

प्रवृत्तिं(ञ्) च निवृत्तिं(ञ्) च, कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं(म्) मोक्षं(ञ्) च या वेत्ति, बुद्धिः(स्) सा पार्थ सात्त्विकी॥18.30॥

हे पृथानन्दन ! जो (बुद्धि) प्रवृत्ति और निवृत्ति को, कर्तव्य और अकर्तव्य को, भय और अभय को तथा बन्धन और मोक्ष को जानती है, वह बुद्धि सात्त्विकी है

विवेचन- हे पार्थ! किसी कार्य को करने की प्रवृत्ति और उससे निवृत्ति होना, करने योग्य कार्य और न करने योग्य कार्य, भय और अभय, बन्धन और मोक्ष, जो इन सबको जानती है, वही सात्त्विक बुद्धि है।

किस कार्य को मुझे करना है और किस कार्य को नहीं करना है? करने वाला कार्य कल्याणकारी है अथवा नहीं है? यह जानने की क्षमता बुद्धि में होनी चाहिए, क्योंकि हमारी बुद्धि ही है जो किसी भी प्रकार का निर्णय लेकर हमसे कार्य करवा सकती है। बुद्धि ही हमें यह ज्ञान देती है कि कौन सा कार्य करना है और कौन सा कार्य छोड़ना है? अच्छा और बुरा कार्य, कौन सा कार्य हमें बाँधेगा और किस कार्य को करने से हमें मोक्ष की प्राप्ति होगी?

यदि हमें ज्ञात है कि नदी में बाढ़ आने पर हमें नदी की ओर नहीं जाना है तो हमे उससे निवृत्ति लेनी चाहिये अर्थात् नहीं जाना चाहिये। सात्त्विक बुद्धि में ही यह क्षमता होती है। ऐसी बुद्धि में विवेक जागृत रहता है। यदि भगवद्गीता का एक स्वर होगा ईश्वर की प्राप्ति, आत्मज्ञान की प्राप्ति और स्वयं की पहचान तो दूसरा स्वर होगा जागृत बुद्धि।

हमारे वेद और शास्त्रों में भी कहा गया है, अजस्त्र-प्रवाह अर्थात् हिंसक पशुओं से लड़ना नहीं है उनसे डरना है। बच्चे अत्यन्त वेग से गाड़ी चलाते हैं, जिससे दुर्घटना के शिकार हो जाते हैं. यह विवेकहीनता है। जो बुद्धि इन भेदों को जानती है, वह सात्त्विक बुद्धि है।

सन्त कबीरदासजी का एक दोहा है-

कहो कबीर में सो गुरु पाया जाका नाम विवेक रे।
मैंने विवेकरूपी गुरु की प्राप्ति कर ली है।

महाभारत के युद्ध में श्रीभगवान् स्वयं अर्जुन के सारथी हैं, अर्थात् उनके गुरु हैं। इसी प्रकार हमारे जीवन में भी यह श्रीमद्भगवद्गीता गुरु के रूप में हमें मार्ग दिखाती हैं।

जब कोई बालक गलत सङ्गति में पड़ जाता है और उसके मित्र उसे गलत कार्य करने के लिये कहते हैं, तब उसकी विवेक बुद्धि ही उसकी सहायता करती है। यदि इसी स्थान पर वह अपने मित्रों की बात मान लेता है तो वह गलत आदतों का शिकार हो जायेगा।

अपने अन्दर की ध्वनि को सुनना आवश्यक है।

There is a voice inside you. That whispers all day long,
" I feel that this is right for me,
I know that this is wrong."
No teacher, preacher, parent, friend
Or wise man can decide
What's right for you - just listen to
The voice that speaks inside.

इस अन्दर के स्वर को सुनते जाना है और उसे उन्नत करते जाना है। इसके बाद श्रीभगवान् हमारे मार्गदर्शक बनने लगते हैं।

18.31

यया धर्ममधर्मं(ञ्) च, कार्यं(ञ्) चाकार्यमेव च।
अयथावत्प्रजानाति, बुद्धिः(स्) सा पार्थ राजसी॥18.31॥

हे पार्थ! (मनुष्य) जिसके द्वारा धर्म और अधर्म को, कर्तव्य और अकर्तव्य को भी ठीक तरह से नहीं जानता, वह बुद्धि राजसी है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं-

"हे पार्थ! जो व्यक्ति यथावत् अर्थात् यथार्थता से धर्म अर्थात् कर्त्तव्य, अधर्म अर्थात् जो कार्य नहीं करना चाहिए, उसे नहीं जानता, जिसका आँकलन धूमिल होता है, जिसे सही तथा गलत की पहचान नहीं होती, जिसका विवेक उतना अधिक जागृत नहीं होता है, ऐसी बुद्धि राजसी बुद्धि होती है।"

भ्रष्टाचार को ही शिष्टाचार कहना या अश्रद्धा को अन्धश्रद्धा कहना, गलत बात को सही कहना तथा सही बात को गलत कहना, यह राजसिक बुद्धि हो जाती है।

18.32

अधर्मं(न्) धर्ममिति या, मन्यते तमसावृता।

सर्वार्थान्विपरीतांश्च, बुद्धिः(स्) सा पार्थ तामसी॥18.32॥

हे पृथानन्दन ! तमोगुण से घिरी हुई जो बुद्धि अधर्म को धर्म मान लेती है और सम्पूर्ण चीजों को उलटा (मान लेती है), वह तामसी है।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं-

"अर्जुन! जो बुद्धि उल्टा ही देखना आरम्भ करती है, गलत ही करती है, सही को गलत तथा गलत को सही मानती है, वह तमोगुण से व्याप्त होने के कारण अधर्म को ही धर्म समझती है, सदैव विपरीत बातें करवाने वाली ऐसी बुद्धि तामसिक बुद्धि कहलाती है।"

अनेक बार व्यक्ति गलत को सही प्रमाणित करने के लिए वाद-विवाद करते हैं, उसी के लिए अन्य व्यक्तियों को भी उकसाते हैं। हमने अनेक बार देखा है कि आतङ्कवादी सङ्गठन दूसरों की बुद्धि को सम्मोहित करते हैं तथा उन्हें गलत शिक्षा देते हैं। इस प्रकार धर्म के नाम से अधर्म का व्यवहार सिखाने वाली तामसिक बुद्धि होती है।

हमारे देश में अनेक बार श्रद्धा को अन्ध-श्रद्धा कहा जाता है, जैसे
"शिवजी को दूध क्यों चढ़ाते हो?" या माँसाहार का समर्थन करना कि उसमें प्रोटीन अधिक होता है आदि।

क्या दुग्ध, दालों तथा अङ्कुरित अनाज में प्रोटीन नहीं मिलते? आजकल खेल के अनेक अध्यापक माँसाहार के लिए बच्चों को बहुत दबाव डालते हैं। हमें इससे बचना चाहिए।

18.33

धृत्या यया धारयते, मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः।
योगेनाव्यभिचारिण्या, धृतिः(स्) सा पार्थ सात्त्विकी॥18.33॥

हे पार्थ! समता से युक्त जिस अव्यभिचारिणी धृति के द्वारा (मनुष्य) मन, प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं को धारण करता है अर्थात् संयम रखता है, वह धृति सात्त्विकी है।

विवेचन- धृति शब्द का अर्थ धैर्य है। धृति के दो अर्थ होते हैं- साहस तथा धैर्य। श्रीभगवान कहते हैं, "अर्जुन! धृति भी तीन प्रकार की होती है। मनुष्य के जीवन में गलत धारणा भी हो जाती है।

यक्ष के सौ प्रश्न हैं जिनके उत्तर धर्मराज युधिष्ठिर ने एक-एक वाक्य में दिये। उनसे पूछा गया कि "अकेले का साथी कौन है?" उन्होंने कहा-

"धृत्या द्वितीया भवति"

अर्थात् धृति होगी। इस प्रकार धृति मनुष्य की अकेलेपन की साथी है।

श्रीभगवान कहते हैं, "हे पार्थ! व्यभिचार न करते हुए जो धृति, जो धैर्य अपने मनोबल, प्राण तथा इन्द्रियों को धारण करता है, वह सात्त्विक धृति है।

जब अर्जुन दिव्यास्त्र लेने के लिए स्वर्ग में गये, वे उर्वशी का नृत्य देखते हुए, उनके पग देख रहे थे। उन्हें उसमें अपनी माता के पग से समानता दिखी। उन्होंने सोचा कि उर्वशी मेरे सारे वंश की जननी है। उर्वशी को लगा कि वे उन पर सम्मोहित हो गये हैं। वह रात्रि में उनके पास गयी तो उन्होंने उर्वशी को माँ सम्बोधित किया। उर्वशी ने उन्हें नपुंसकता का श्राप दिया। अज्ञातवास के समय अर्जुन ने बृहन्नला के रूप में उस श्राप को भुगता लेकिन धैर्य नहीं खोया।

18.34

यया तु धर्मकामार्थान्, धृत्या धारयतेऽर्जुन।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी, धृतिः (स्) सा पार्थ राजसी॥18.34॥

हे पार्थ! समता से युक्त जिस अव्यभिचारिणी धृति के द्वारा (मनुष्य) मन, प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं को धारण करता है अर्थात् संयम रखता है, वह धृति सात्त्विकी है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं, "अर्जुन! कुछ धृति धर्म, अर्थ और काम फलाकाङ्क्षा के लिए की जाती हैं, ऐसी धृति राजसी धृति कहलाती है।" किसी की सम्पत्ति धारण करने की क्षमता भी बहुत बड़ी हो सकती है।

18.35

यया स्वप्नं(म्) भयं(म्) शोकं(म्), विषादं(म्) मदमेव च।
न विमुञ्चति दुर्मेधा, धृतिः(स्) सा पार्थ तामसी॥18.35॥

हे पार्थ! दुष्ट बुद्धिवाला मनुष्य जिस धृति के द्वारा निद्रा, भय, चिन्ता, दुःख और घमण्ड को भी नहीं छोड़ता अर्थात् धारण किये रहता है, वह धृति तामसी है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं, "तीसरी प्रकार की धृति दुर्मेधा धृति होती है, जो स्वप्न, भय, शोक, विषाद, उन्मत्तता को छोड़ना ही नहीं चाहती। मनुष्य की भी गलत बातें धारण करने की भी एक क्षमता होती है। वह इन सबसे निकलना ही नहीं चाहता। ऐसे व्यक्ति पुरानी बातों का शोक करते रहते हैं तथा भविष्य की चिन्ता करते रहते हैं।

सत्त्व, रज तथा तम, इन सारी बातों का विश्लेषण करते हुए मनुष्य को अन्ततोगत्वा सुख ही चाहिए होता है। यह हम अगले विवेचन में देखने का प्रयास करेंगे।

इसी के साथ आज का विवेचन सत्र सम्पन्न हुआ तथा प्रश्नोत्तर सत्र आरम्भ हुआ।

प्रश्नोत्तर सत्र

प्रश्नकर्ता- माला दीदी

प्रश्न- अट्ठारहवें अध्याय के तीस से पैन्तीस श्लोक तक लगातार चतुर्थ चरण में सात्त्विक, राजसिक, तामसिक क्यों आया है?

उत्तर- इन श्लोकों में सात्त्विक, राजसिक, तामसिक गुणों के विषय में बताया जा रहा है, इसलिये इनका प्रयोग किया गया है। ये सभी गुण सात्त्विक, राजसिक, तामसिक होते हैं- कर्त्तव्य, धर्म, बन्धन, धृति, ये सभी तीनों गुणों से युक्त होते हैं, इसलिये इन तीनों गुणों का वर्णन क्रमशः इन श्लोकों में किया गया है।

प्रश्नकर्ता- वीना दीदी

प्रश्न- अट्ठारहवें अध्याय में वर्णित भय, शोक, विषाद मुझमें हैं? इनसे कैसे मुक्त हों?

उत्तर- इनसे मुक्ति पाने के लिये बाहर नहीं अपने अन्दर ही प्रवेश करना है। अपने अन्दर विद्यमान अवगुणों को जब तक हम नहीं देख पायेंगे, तब तक दोष-निवृत्ति की भावना भी नहीं आएगी। हम अपनी कमियों को दोषी ठहराते हैं, किन्तु वे अपने में ही स्थित हैं। सभी दुर्गुण स्वयम् में ही स्थित हैं। इन्हें समझ कर अभ्यास एवम् प्राणायाम से कम किया जा सकता है। ये तीनों गुण सभी प्राणियों में विद्यमान हैं। उन्हें धीरे धीरे पहचान कर दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता- सरला दीदी

प्रश्न- प्राकृत एवम् स्तब्ध (अट्ठारह अध्याय श्लोक 28)

उत्तर- प्राकृत असंस्कृत या गँवार, स्तब्ध- एक जगह पर बैठना, कार्य करने की प्रवृत्ति न होना, अधिक प्रेरित न होना।

प्रश्नकर्ता- रश्मि दीदी

प्रश्न- आध्यत्मिक गुरु होना आवश्यक है क्या? हम श्री गोविन्ददेवगिरि जी को तो गुरु मानते ही हैं, क्या दीक्षा लेना ज़रूरी है?

उत्तर- दीक्षा लेना सर्वोपरि है, इसके कारण हमें मन्त्र मिलता है। मन्त्र का अर्थ है आमन्त्रण, निमन्त्रण- इसका तात्पर्य है बुलाना। मन्त्र से हम परमात्मा को बुलाते हैं। यह गुरु मुख से आता है, किन्तु मनोबल से कुछ भी प्राप्त किया जा सकता है। एकलव्य ने गुरु की प्रतिमा बनाकर धनुर्विद्या सीखी थी। यह उनके मनोबल से ही सम्भव हुआ। यदि हमारी गुरु से दूरी है, किन्तु समर्पण हो तो गुरु ही गुरु चरणों तक पहुँचा देते हैं। मटका बनाने में जैसे ऊपर से ठोक कर और भीतर से हाथ डाल कर कुम्हार घड़े को गढ़ता है। उसी प्रकार गुरु भी हमें ऊपर से कठोरता से और अन्दर से कोमलता से सँवारते हैं। इससे हमारी सहनशक्ति बढ़ती है। सही समय आने पर गुरु की प्राप्ति होति है। सांसारिक विषय के ज्ञान प्राप्त करने के लिये भी किसी कक्षा में प्रवेश लेने की आवश्यकता होती है।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||